Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 30-10-2021, Accepted: 16-11-2021, Published: 01-12-2021
Volume 2, Issue 2, 2021, Page No. 37-42

नैतिकता की अवधारणा और स्त्री

डॉ. घनश्याम दास
सहायक प्राध्यापक, (हिंदी), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश

नैतिकता एक ऐसी अवधारणा है जिसने स्त्री को स्वच्छन्द रूप से रहने और सोचने ही नहीं दिया। ज्ञात इतिहास इसका उदाहरण है। इतिहास इस बात का भी गवाह है कि स्त्री यदि अधोगति के लिए विवश थी तो उनके पीछे पुरुष मानसिकता की वह सीमा रेखा कार्यरत थी जिसको स्त्री चाहकर भी नहीं लाँघ सकती थी। यदि वह सीमाओं को लांघती तो उसे अनेक लांछनों को सहना पड़ता, हालांकि उसने अनेक लांछन सहे भी हैं और कमोबेश आज भी सह रही है। स्त्री खुद अपनी अधोगति को अपनी नियति मानकर चुपचाप समय के साथ समझौता करती रही है। नैतिकता का सारा जाल स्त्री के इर्दगिर्द जो बुना गया, उसका उद्देश्य स्त्री पर शासन करना था, उसे अपने इशारों पर चलाने के लिये था। स्त्री देह पर नियंत्रण इसकी बड़ी उपलब्धि रही क्योंकि देह पर नियन्त्रण से स्त्री पूर्णतः पुरुष के अख्तियार में आ गयी। स्त्री के मानस में देह की शुचिता को बड़े गहरे तक पितृसत्ता ने काबिज़ कर दिया जिससे स्त्री देह से बाहर निकल ही नहीं पाई। ऐसे में स्त्री पर शासन करना पितृसत्ता के लिए आसान हो गया। धर्म, समाज, परम्परागत रीति रिवाज आदि से सम्बंधित नैतिकताएँ स्त्री के खाते में बड़ी चालाकी से डाल दी गईं। स्त्री ने भी इसे अपने जीवन का हिस्सा मान लिया और नैतिकता के जाल में ऐसी उलझती गई कि फिर इनसे निजात मिलना उसके लिए मुश्किल हो गया। ऐसा नहीं है कि नैतिकता कोई बुरी चीज है या नैतिकता से कोई नुकसान है, लेकिन समस्या और प्रश्न यह पैदा होता है कि नैतिकता की सारी ठेकेदारी स्त्री के हिस्से ही क्यों डाल दी गई? देह शुचिता की अवधारणा को इसके उदाहरण के रूप में देखी जा सकती है। देह शुचिता का सवाल स्त्री और पुरुष दोनों के लिए होना चाहिए क्योंकि देह तो पुरुष की भी होती है, लेकिन पुरुष शुचिता के इस दायरे से बाहर रहता है लेकिन स्त्री नहीं। धर्म, सामाजिक जिम्मेदारी अथवा परम्पराएँ सभी को स्त्रियां ही निभाती रही हैं और आज भी निभा रही हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक स्त्रियाँ नैतिकता के दायरों में बंधी चली आ रही है।

मूल शब्द: नैतिकता, पितृसत्ता, देह शुचिता, नीति, नैतिक दायित्व, नीतिशास्त्र, स्त्री विमर्श

प्रस्तावना

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष दोनों को एक समान जीवन दिया है। शरीरिक क्षमताएं भी दोनों को प्रदान की हैं। हाँ, जहाँ तक शरीरिक संरचना और बनावट की बात है तो प्रकृति ने जरूर उनमें कुछ परिवर्तन किए हैं। शरीरिक दृष्टि से पुरुष स्त्री की तुलना में कुछ अधिक

शक्तिशाली है लेकिन बिना स्त्री के उसकी शक्ति का कोई लाभ नहीं। यह सर्वविदित है कि पुरुष बिना स्त्री के अधूरा है और स्त्री ही उसे पूर्णता देती है। इससे भी बढ़कर कि स्त्री ही पुरुष के जीवन का आधार है क्योंकि वह जननी है। वह पुरुष के होने का कारण है। लेकिन विडम्बना देखिए कि वही जननी पुरुष के नियन्त्रण में रहने को विवश होती रही है।

जब हम नैतिक दायित्वों की बात करते हैं तो पाते हैं कि इसकी बहुत हद तक जिम्मेदारी स्त्रियों पर होती है। समाज में स्त्री ही नैतिक मूल्यों की वाहिका होती है। माँ, बहन, बेटी पत्नी आदि की अलग-अलग भूमिकाओं में स्त्री नैतिकता का निरन्तर निर्वाह करती चलती है। उससे यह अपेक्षा की जाती रही है और लगातार की जाती है कि वह नैतिकता की सीमाओं का उल्लंघन न करे, वह किसी भी सामाजिक लक्ष्मण रेखा का अतिक्रमण न करे। यदि वह ऐसा करती है तो उसे सामाजिक अपयश का शिकार होना पड़ता है। लेकिन दूसरी तरफ पुरुष के लिए नैतिकता के कड़े नियम नहीं होते।यदि पुरुष कहीं अनैतिक होता भी है तो उसे पुरुष होने का लाभ मिल जाता है और स्त्री की भांति उसे किसी भी तरह की अग्निपरीक्षा देने के लिये विवश नहीं होना पड़ता। यह हमारे समाज की एक हकीकत है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक नैतिकताओं के सारे नियम और कानून स्त्रियों पर ही लागू किए जाते हैं, पुरुषों पर नहीं।

नैतिकता की अवधारणा

नैतिकता एक भारी-भरकम और दुरूह शब्द है। नैतिकता को समझने के लिए इसके अर्थ को सम्पूर्णता में जानने और समझने की आवश्यकता होती है। सतही तौर पर नैतिकता को नहीं समझा जा सकता, इसके लिए अर्थों के अथाह सागर में गहरे उतरने की जरूरत होती है। नैतिकता शब्द नैतिक से बना है और नैतिक नीतिशास्त्र का शब्द है। नैतिक होने का अर्थ है कि मनुष्य के अंदर सच्चाई, इमानदारी, दयालुता, मैत्री सौहार्द आदि मूल्य होने चाहिए। इसके अंतर्गत कर्तव्य परायणता,पवित्रता, शुचिता, चारित्रिक दृढ़ता, पवित्र ह्रदय सत्य भाषण आदि की अनिवार्यता होती है।

नैतिकता का अर्थ है- नीतियों के अनुसार कार्य करना। नीति से सम्बंधित कार्य नैतिक कहे जाते हैं और नैतिकता की श्रेणी में आते हैं। नीतिशास्त्र के ज्ञान और उसके आधार पर किये जाने वाले आचरण और कार्य नैतिकता की परिधि में आते हैं। नैतिकता को हम दार्शनिक अवधारणा भी कह सकते हैं जहाँ सही अथवा गलत, पाप अथवा पुण्य, अच्छा या बुरा आदि की परख होती है। यह मानवीय जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा होती है क्योंकि नैतिकता ही मनुष्य को मनुष्य होने का एहसास कराती है। नैतिकता वस्तुतः मानवीय मूल्यों की एक ऐसी व्यवस्था है जो मनुष्य जाति के जीवन को सही दिशा देती है, जीवन को सही अर्थ देती है और मनुष्य को सामाजिक तौर पर जिम्मेदार और ईमानदार बनाती है। यह मनुष्यों, राज्यों, राष्ट्रों आदि के बीच मैत्री, समन्वय और विश्वास पैदा करती है।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध और नैतिकता

स्त्री और पुरुष (पति-पत्नी) के बीच का सम्बंध भी नैतिकता पर ही टिक होता है। स्त्री पुरुष के बीच विश्वास और प्रेम की जो डोर होती है उस डोर का बने रहना भी बहुत हद तक नैतिकता पर ही निर्भर करता है। पति और पत्नी का एक दूसरे के प्रति विश्वास और सहयोग का भाव स्त्री पुरुष के बीच के सम्बंध को मजबूत और स्थायी बनाता है। इस सारी प्रक्रिया में स्त्री का रोल अहम होता है क्योंकि नैतिक मूल्यों के साथ सम्बन्धों को लेकर चलने की जिम्मेदारी उन्हीं के कंधों पर टिकी होती है। पुरुष क्योंकि अधिक शक्तिशाली होता है और साथ ही वह श्रम से जुड़ा होता है और अर्थोपार्जन क्रय है अतः नीति और नियम जैसे

मूल्यों से उसे अधिक नहीं टकराना पड़ता। दूसरी ओर स्त्री यदि श्रम से जुड़ी होती है और कमाती है तब भी वह नैतिक जिम्मेदारी से भाग नहीं सकती है क्योंकि परम्परागत सोच उसे ऐसा नहीं करने देती। परम्परा से स्त्रियों को ही नैतिकता का निर्वाह करने की सीख दी जाती है, पुरुषों को नहीं। स्त्री के कर्तव्य ही उसे याद कराए गए, अधिकारों की चर्चा कम की गई। महादेवी वर्मा की टिप्पणी इस संदर्भ में देखने योग्य है। वह लिखती हैं-

"उसके जीवन का प्रथम लक्ष्य पत्नीत्व तथा अंतिम मातृत्व समझा जाता रहा, अतः उसके जीवन का एक ही मगर आजीविका का एक ही साधन निश्चित था।"[1] प्रख्यात स्त्री लेखिका सिमोन द बोउवार ने कहा था कि 'स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है'। सिमोन ठीक ही कहती हैं। बेटी के पैदा होते ही उसे नैतिक शिक्षाओं की हैवी डोज़ देनी शुरू कर दी जाती है जिससे वह संस्कारी बने। हालांकि इसमें कोई बुराई नहीं है लेकिन ऐसी ही शिक्षा यदि बचपन से ही पुरुष को भी दी जाए तब तो ठीक है परन्तु ऐसा प्रायः नहीं होता। राजेंद्र यादव लिखते हैं-

"कभी कभी मुझे आश्चर्य होता है कि वे क्या मनोवैज्ञानिक या सामाजिक कारण रहे हैं कि पितृसत्ता स्थापित होते ही पुरुष ने सब कहीं स्त्री को कुचला है। दलितों को प्रायः शस्त्र से, स्त्रियों को शास्त्र से...अर्धनारीश्वर की पूजा करने वाला क्यों स्त्री को हत्या और आत्महत्या के बीच जीने को मजबूर करता रहा।"[2] दरअसल इन सभी स्त्री समस्याओं के केंद्र में पितृसत्ता ही होती है जो स्त्रियों पर नियंत्रण का कोई अवसर नहीं चूकती। इसी पितृसत्ता के अंतर्गत माँ, बहन,बेटी पत्नी आदि पर नियन्त्रण और शासन किया जाता है। मंदिर में देवी की मूर्ति की पूजा करने वाला मन्दिर के बाहर स्त्री पर अन्याय और अत्याचार करता है। सभाओं में स्त्री के हक़ों की वकालत करने वाला घर मे अपनी पत्नी को प्रताड़ित करता है, उसकी उपेक्षा करता है। कामायनी में जयशंकर प्रसाद लिखते हैं -'पुरुषत्व मोह में भूल गए तुम कुछ सत्ता है नारी की।' प्रसाद स्त्री की सत्ता की बात तो करते हैं लेकिन यह सत्ता 'कुछ' है, यानी यह कुछ कितना है इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यदि जयशंकर प्रसाद आधी सत्ता की बात करते तो सम्भवत स्त्री के प्रति न्याय होता।

देह-शुचिता की अवधारणा और नैतिकता

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि स्त्री की समस्त समस्याएं देह से शुरू होती हैं और देह पर ही समाप्त होती हैं। वस्तुतः सारा स्त्री विमर्श स्त्री देह के इर्द गिर्द ही घूमता है। पुरुष का सारा चक्रव्यूह (पितृसत्ता) स्त्री देह को नियंत्रित और संचालित करने के निमित्त ही रचा जाता गया है और कमोबेश आज भी इसकी प्रक्रिया जारी है।

देह शुचिता एक ऐसी अवधारणा है जिसमें स्त्री ताउम्र भटकती है। इस भटकाव से वह स्वयं को मुक्त नहीं कर पाती। पितृसत्ता स्त्री की देह पर नियंत्रण कर स्त्री का शोषण करती है। स्त्री से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी सीमा रेखा में रहे, उसका अतिक्रमण न करे। नैतिकता की इन सीमाओं का पुरुष से कोई सरोकार नहीं दिखता है। यह बड़ा आश्चर्य का विषय है कि स्त्री का उसकी खुद की देह पर अधिकार नहीं होता। प्रख्यात लेखिका रमणिका गुप्ता कहती हैं-

"यह सही है कि भारत में स्त्री के लिए नैतिकता का मतलब उसकी यौन शुचिता है और यह भी कि स्त्री की नैतिकता उनकी देह से शुरू होकर देह पर खत्म हो जाती है। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि स्त्री की देह ही तो है जो स्त्री की अपनी है- उस पर भी उसका अधिकार नहीं है।"[3]

रमणिका जी सही वक्तव्य देती हैं कि स्त्रियों की देह तो उनकी अपनी होती है लेकिन विडम्बना है कि उस पर भी उसका खुद का ही पूरा अख्तियार नहीं। वस्तुतः यह पितृसत्ता की सोची समझी साजिश के तहत ही

होता है। सारी नैतिकताएं दरअसल स्त्री देह के इर्दगिर्द ही घूमती हैं और स्त्री को बंदिशों में रखती हैं। असीमा भट्ट लिखती हैं-

"अजीब बात है कि पूरे संसार में जब भी नैतिकता की बात आती है तो वह बस औरत की देह पर आकर टिक जाती है।"[4]

साथ ही असीमा जी लिखती हैं-

"यानी देह के बाहर स्त्री कुछ भी नहीं है। सारी नैतिक अनैतिक मान्यताएं केवल उसी पर थोपी जाती हैं। स्त्री प्रेम करे तो चरित्रहीन! किसी से शारीरिक रिश्ता कायम करे तो उसका नैतिक पतन हो गया। अगर संभोग से नैतिक पतन एक स्त्री का होता है तो पुरुष का क्यों नहीं। केवल स्त्री का क्यों?"[5]

निश्चित रूप से यह वाजिब प्रश्न है जिसे असीमा जी उठा रही हैं। इस प्रश्न का उत्तर स्त्री को मिलना ही चाहिए।

दरअसल यह सारा षड्यंत्र केवल स्त्री को अधीन बनाने के लिए रचा गया है। स्त्री के जन्म से लेकर मरण तक स्त्री को पितृसत्ता गुलाम बनाने का ही षड्यंत्र रचती रहती है। मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है की एक स्त्री को सदा पुरुष के आधीन रहना चाहिए। इसी में उसकी भलाई है, उसका हित है। उसे स्वतन्त्रता पूर्वक घर में भी कोई कार्य नहीं करना चाहिए। उसे हमेशा पिता, पुत्र अथवा पति के वशीभूत होकर ही रहना चाहिए। आश्चर्य का विषय है कि समाज इन बातों को स्वीकार करता रहा और स्त्री को गुलामी की जंजीरों में बांधता रहा। मनुस्मृति में स्त्री की परवशता या गुलामी की पुरजोर वकालत बड़े-बड़े बुद्धिजीवी करते रहे हैं। इस संदर्भ में महावीर प्रसाद द्विवेदी का कथन देखना चाहिए। वह कहते हैं-

"इसी कारण कुछ महाशयों के द्वारा मनु पर यह इल्जाम लगाया जाता है कि उन्होंने स्त्रियों के लिए गुलामी का पट्टा लिख दिया है। परंतु इस आक्षेप में अत्युक्ति जान पड़ती है। बात बहुत बढ़ाकर कही गई मालूम होती है। इसमें सारता तो कम असारता ही अधिक है। क्या पुत्र अपने पिता का वशवर्ती नहीं होता? क्या ब्रह्मचारी या विद्यार्थी अपने आचार्य की अधीनता में नहीं रहता? क्या प्रजा-जन राजा की आज्ञा के पालक नहीं होते? धर्म संबंधी बातों में क्या सब लोग शास्त्र का आदेश नहीं मानते? यदि राजभक्ति के अधीन होना गुलामी नहीं, यदि आचार्य और विद्वानों की आज्ञा मानना गुलामी नहीं, यदि शास्त्रों के विधि विधान का पालन करना गुलामी नहीं तो स्त्रियों को अपने पिता, पुत्र और पति के अधीन होकर रहना भी गुलामी नहीं। मनु की उक्ति में तो गुलामी या पराधीनता की कहीं गन्ध तक नहीं।"[6]

महावीर प्रसाद द्विवेदी स्त्री के सन्दर्भ में जिन तर्कों का ज़िक्र कर रहे हैं वह संदर्भानुसार उचित नहीं लगते। कारण, क्योंकि स्त्री की अधीनता और शिष्य, पुत्र अथवा प्रजा आदि की अधीनता में व्यापक अंतर होता है। जो भी उद्धरण द्विवेदी जी ने दिए हैं वह परवशता अथवा गुलामी की तरह नहीं होते जबकि स्त्री की अधीनता का स्तर बिल्कुल अलग होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि स्त्री को प्राचीन समय से शोषण और अपमान सहन करना पड़ा है और वह आज भी इनसे पूर्णतः मुक्त नहीं है।

देह शुचिता की जहाँ तक बात है तो इसके दूसरे पक्ष को भी देखना अनिवार्य हो जाता है। देह केवल स्त्री की ही नहीं होती बल्कि पुरुष भी देह के साथ ही जन्म लेता है। लेकिन जब देह की नैतिकता का प्रश्न उठता है तो केवल स्त्री देह का ही जिक्र होता है । पुरुष देह का नहीं। अग्निपरीक्षा केवल स्त्री की ली जाती है, पुरुष अग्निपरीक्षा नहीं देता। यदि एक वर्ष तक अलग रहने के कारण स्त्री को अपनी शुचिता सिद्ध करनी पड़ी तो पुरुष को भी इसी सिद्धांत के चलते अग्नि परीक्षा देनी चाहिए थी।

लेकिन पुरुष को इनसे छूट होती है, उनकी देह किसी भी शुचिता के सिद्धांत से परे मान ली गई है। इस

सिद्धांत के दायरे में तो केवल स्त्री देह ही पिसती है। असीमा भट्ट इस संदर्भ में लिखती हैं-

"पता नहीं किस घड़ी में नैतिकता का सारा भार औरतों के कन्धे पर डाल दिया गया कि अग्नि परीक्षा होगी तो सीता की, दांव पर लगेगी तो द्रौपदी। सती कोई होगी तो औरत... किसी भी तरह की अग्निपरीक्षा हो या कसौटी पर खरे उतरने की बात हो तो वह सिर्फ़ औरत की होती है।"[7]

दरअसल स्त्री की यही त्रासदी है। पितृसत्ता की चक्की में स्त्री लगातार पिसती रही है। प्राचीन काल से आज तक नैतिकता के सारे नियम स्त्री के ही पल्ले पड़े और वह इनसे हमेशा दो चार होती रही। आज भी जबकि हम उत्तर आधुनिक होने का दम्भ भरते हैं, स्त्री की अग्निपरिक्षाएँ किसी न किसी रूप में होती रहती हैं।

निष्कर्ष

किसी भी सभ्य समाज में नैतिक गुणों का होना आवश्यक है। नैतिक मूल्यों के बिना कोई भी समाज सभ्य नहीं हो सकता।

धर्म-संस्कृति समाज को नैतिकता ले मार्ग पर चलने को लगातार प्रेरित करते हैं। समाज अपने नैतिक मूल्यों के बल पर ही आगे बढ़ सकता है और विकास की ओर अग्रसर हो सकता है। नैतिकता के व्यापक दायरे में स्त्री और पुरुष दोनों ही आते हैं लेकिन पितृसत्तात्मक समाज दोहरी मानसिकता में जीता है। वह स्त्री को तो नैतिक शिक्षा देता है और अपेक्षा करता है कि वह नैतिक मूल्यों को दरकिनार न करे। लेकिन पुरुष के सम्बंध में नैतिकता की बात तो की जाती है परंतु पुरुष को इसमें राहत मिलती रहती है। वास्तव में सच्चाई यह है कि स्त्री ही नैतिक दायरे में बांधी जाती है। स्त्री को अधिक नैतिक गुणों वाली माना गया परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता पर संदेह किया गया। दरअसल समाज का स्त्री और पुरुष को लेकर जो दोहरा मापदंड है या कहें दोहरी मानसिकता है इसी के चलते सामाजिक स्तर पर नैतिकता का मूल्यांकन भी दोहरे स्तर पर किया जाता है। स्त्री के लिए अलग, पुरुष के लिए अलग। यही पितृसत्तात्मक मानसिकता होती है जिसमें स्त्रियों को कड़े सामाजिक नियमों में रहने को विवश किया जाता है।

स्त्री हमेशा पितृसत्ता की शिकार रही। इतिहास हमें बताता है कि स्त्री शोषित और पीड़ित रही है। उसका शोषण और उत्पीड़न पुरुष करता रहा।

सामाजिक पूर्वाग्रह के चलते स्त्री मानसिक रूप से हमेशा परेशान रही, लेकिन फिर भी वह जीवन संघर्ष में जूझती रही। समाज का भार अपने कंधों पर उठाकर वह समाज को लगातार आगे बढ़ाने में अपना सहयोग दे रही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक, पहला पेपरबैक संस्करण-2008, दूसरा पेपरबैक संस्करण-2010, पृष्ठ-66
2. राजेन्द्र यादव, आदमी की निगाह में औरत, राजकमल पेपरबैक, पहला संस्करण-2006, पहली आवृत्ति-2010, पृष्ठ-26
3. रमणिका गुप्ता, नागपाश में स्त्री, सम्पादक-गीताश्री, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2010, पृष्ठ-79
4. असीमा भट्ट,नागपाश में स्त्री, सम्पादक-गीताश्री, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2010, पृष्ठ-208
5. असीमा भट्ट,नागपाश में स्त्री, सम्पादक-गीताश्री, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2010, पृष्ठ-208
6. महावीर प्रसाद द्विवेदी, महावीर प्रसाद द्विवेदी रचना संचयन, चयन एवं सम्पादन- भारत यायावर, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण-2006, पुनर्मुद्रण-2008, पृष्ठ-526

7. असीमा भट्ट, नागपाश में स्त्री, सम्पादक-गीताश्री, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2010, पृष्ठ-209